संपादक की कलम से....

‘भारतबोध’ पत्रिका का यह तीसरा अंक है। विगत दो अंकों की भाँति यह अंक भी सुधी पाठकों के वैचारिक पटल को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध हो, यही प्रयास है। यह अंक भारत की एक समृद्ध प्रदर्शनकारी विधा 'मुखौटा-कला' पर केंद्रित है। उद्देश्य है-भारत की संपन्न सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण-संवर्धन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप प्रदर्शनकारी कलाओं के उन्नयन को महत्व प्रदान करना। आपको ज्ञात है कि असम की मुखौटा कला की अपनी नैसर्गिक विशेषताएं हैं, जो एक कलाप्रेमी और साहित्यानुरागी समाज को अनवरत आकृष्ट करती रहती हैं। मुखौटा-कला पर केंद्रित 'भारतबोध’ का यह नवीन अंक इन्हीं भावों को प्रतिध्वनित करता है।

'कला' मानवीय गुणों की भावनात्मक अभिव्यक्ति है। कला सामाजिक जीवन के विकास मूल्यों की सम्यक संरचना का आधार है। कला किसी समाज में पाए जाने वाले उच्चतम मूल्यों और आदर्शों की वह चेतना है जो व्यक्ति को मनुष्य बनाए रखती है। कला सौंदर्यशास्त्रीय सृजनात्मकता का प्रतीक भी है। वास्तव में कलाओं का जन्म ही हुआ है मनुष्यता का विस्तार करने के लिए। जो कला मानवता का प्रसार नहीं कर पाती, वह दीर्घजीवी नहीं होती। नाट्यकला हमारे जीवन का पर्याय है। नाट्यकला की दृश्यात्मकता उसे व्यापक बनाती है। इसी व्यापकता का एक आयाम है मुखौटा-कला।

भाषा, संस्कृति, इतिहास, साहित्य, समाज और परंपरा में यह अनेक रूपों में स्थापित है। यह हमारी संपन्न सांस्कृतिक विरासत का जीता-जागता उदाहरण है। यह न सिर्फ असम, बल्कि अखिल भारतीय मानस के सांस्कृतिक आयाम को छूता हुआ एक विशिष्ट कला-रूप है। उत्सवधर्मिता और सांस्कृतिक संपन्नता भारत की पहचान है। सांस्कृतिक विरासत और विविध कलारूप भारत के उत्सवधर्मी स्वभाव और ऐक्य भाव को दर्शाने का प्रमुख माध्यम है। भारतबोध एक उदाहरण है, जो भारत को विश्व में सांस्कृतिक संपन्नता का प्रतीक बनाता है। यहाँ की भाषा संपन्नता, पांथिक मान्यताएं और समन्वय-भाव भारतभाव को संप्रेषित करते हैं। इसके अलावा रंग-रूप, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, नृत्य- संगीत, साहित्य-शिल्प, कला-कौशल आदि मामलों में भी 'यही बोध पाया जाता है। इस सांस्कृतिक संपन्नता को यथेष्ट सम्मान देते हुए भारत को एकता के सूत्र में पिरोये रखना और समरस विकास को बढ़ावा देना, समृद्ध और सक्षम भारत की आवश्यकता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इसी 'सत्र' के अंकिया नाट, भाओना आदि में प्रदर्शित मुखौटा-कला के जरिए ही श्रीमंत शंकरदेव और महात्मन माधवदेव ने जाति, धर्म और संप्रदाय में बिखरे असमिया समाज को एकजुट किया था। अतः इन्हीं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मुखौटा-कला जैसी विशिष्ट नाट्य-शैली को समर्पित है यह अंक।

उत्सवधर्मी भारत की सांस्कृतिक पहचान यहाँ के विविध कला रूपों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। अपनी इस सांस्कृतिक विविधता और विरासत के लिए भारत विश्व में जाना जाता है। अपने सांस्कृतिक इतिहास, कला, भाषा एवं परंपरा के प्रति गौरव का भाव ही सही मायनों में भारत को अतुल्य बनाता है। जबकि भारत एक समृद्ध सांस्कृतिक पहचान वाला राष्ट्र है। इसी सांस्कृतिक कर्तव्यभाव से प्रेरित होकर मुखौटा कला पर संवाद का प्रयास किया गया हैं ।

ध्यातव्य हो कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी इस संकल्पना को ध्यान में रखते हुए कहा गया है कि 'संस्कृति के प्रसार का सबसे प्रमुख माध्यम कला है'। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इस बात पर बल दिया गया है कि कला और संस्कृति 'शिक्षा' के सभी स्तरों से संबद्ध हो। संस्कृति का संरक्षण-संवर्धन और प्रसार उस संस्कृति की प्रदर्शनकारी कलाओं (नृत्य, संगीत, नाटक), भाषा-साहित्य, विविध शिल्प-कलाओं और परंपराओं के संरक्षण-संवर्धन के बिना संभव नहीं है। अतः इन बातों को ध्यान में रखते हुए 'भारतबोध' का यह अंक 'मुखौटा-कला' पर केंद्रित है।

आप जानते हैं कि असम के मुखौटा कला की अपनी नैसर्गिक विशेषताएं हैं। असम पूर्वोत्तर भारत का प्रवेश द्वार है। जब हम पूर्वोत्तर के मुखौटा कला की विशिष्टता की बात करते हैं तो हम वहाँ के वैष्णव आंदोलन तथा सत्र-नामघर की परंपरा को अनदेखा नहीं कर सकते। यही वह वैचारिक आधार हैं, जिसने मुखौटा-कला को पूर्वोत्तर भारत में पल्लवित-पुष्पित और विकसित किया है। मुखौटा कला के माध्यम से मेरा उद्देश्य पूर्वोत्तर के संस्कार बोध और सांस्कृतिक बोध से पाठकों का परिचय कराना भी है। पूर्वोत्तर भारत का चरित्र सामासिक, सर्वग्राही और बहुलवादी है। इसी अर्थ में यह भारतीय धार्मिकबोध का प्रतिनिधित्व करता है। यह प्रतिनिधित्व इसे हिंदूदाय में मिला है। पूर्वोत्तर के सांस्कृतिक-राग को अगर समझना हो तो अङ्ग्रेम को, यहाँ के सांस्कृतिकै-सामाजिक जीवन को, यह धार्मिक मूल्यबोध को समझना होगा। पूर्वोत्तर भारत का आध्यात्मिक आंदोलन जिसे नव-वैष्णव आंदोलन भी कहा गया, वह सन् 1350 से लेकर 1650 ई. का है। उत्तर भारत में यह आंदोलन सगुण-निर्गुण भक्ति, राम-कृष्ण भक्ति और सूफी-संत आंदोलन आदि के रूप में पढ़ा जाता है। इस कालखंड में पूर्वोत्तर भारत में शंकरदेव, माधवदेव, राम सरस्वती, अनंत कंदली, श्रीधर कंदली, सार्वभौम भट्टाचार्य, रत्नाकर कंदली, रत्नाकर मिश्र, बदला पद्माता, नारायण आता, दैत्यारी ठाकुर, भूषण द्विज और रामानंद द्विज जैसे कवि सक्रिय रहे हैं। पूर्वोत्तर के जिन कवियों का मैंने उल्लेख किया, वह अकर्मक बुद्धिजीविता के कवि नहीं हैं। सत्र और नामघर असमिया संस्कृति के केंद्रबिंदु हैं। जिसने सत्र नहीं जाना, भाओना नहीं जाना, नामघर नहीं जाना, अंकिया नहीं जाना, वह इन भक्त कवियों का मूल्यांकन नहीं कर सकता है, न ही वहाँ की मुखौटा-कला को समझ सकता है।

'सत्र' सिर्फ भजन-कीर्तन या झाल बजाने की जगह मात्र नहीं है। सत्राधिकार सिर्फ एक धर्मगुरु नहीं है अपितु एक सामाजिक व्यवस्था है। वह स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता की व्यवस्था है। वहाँ सत्रीय नृत्य की शिक्षा दी जाती है, वहाँ भाओना की रंगमंचीय कलाएं सिखाई जाती हैं, मुखौटा-कला सिखाई जाती है, कपड़ा बुनना सिखाया जाता है तथा सामाजिक-पारिवारिक झगड़ों का समाधान किया जाता है। आपको पूर्वोत्तर भारत में ऐसे अनेक परिवार मिल जाएँगे, जो 500 वर्षों से अपने परिवार के एक सदस्य को सत्रों में भेजते रहे हैं। सत्राधि कार धर्मदंड है। वह सत्रों के निवासियों की शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन और सांस्कृतिक-बोध की चिंता करता है। आशय यह है कि मुखौटा कला पूर्वोत्तर भारत में एक सांस्थानिक स्वरूप में विकसित होने वाली कला है। यही कारण है कि शेष भारतू में नाट्यरूपों में प्रयोग होने वाली मुखौटा-कला से यह भिन्न और ज्यादा व्यवस्थित है।

असम के मुखौटा-कला की दूसरी विशेषता है- इसका कथ्य मूलतः धार्मिक चरित्र पर आधारित है। इसमें सात्विक भाव की प्रधानता है। यहाँ वैष्णव भक्ति से जुड़ी कथाओं के पात्रों के चारित्रिक निरूपण पर बल

है। इस दृष्टि से भी यह शेष भारत की लोकनाट्य शैलियों में प्रयुक्त मुखौटा कला से भिन्न है। असम के मुखौटा-कला की तीसरी विशेषता है-निरंतरता। श्रीमंत शंकरदेव से शुरू हुई यह यात्रा 500 साल बाद भी असमिया जनजीवन का स्थायी अंग है। असम के मुखौटा-कला की इसी निरंतरता से पूर्वोत्तर की सांस्कृतिक सातत्यता को समझा जा सकता है। असम के सत्रों में होने वाले मुखौटा-कला की चौथी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है कि इसने जाति, वर्ण, धर्म, संप्रदाय में बंटे हुए असमिया समाज को एकजुट किया और वैष्णव भक्ति की राह दिखाते हुए शेष भारत से जोड़ा। ध्यातव्य है कि असम का सत्र, अंकिया नाट, भाओना या मुखौटा - कला मनोरंजन के साधनमात्र नहीं, बल्कि हिंदूभाव को प्रसारित कर पूर्वोत्तर को भारतबोध से संपृक्त करने का एक सांस्कृतिक उपकरण भी है। ऐसी विशेषता भारत भूमि के अन्य क्षेत्रों में व्याप्त मुखौटा कला में दृष्टिगोचर नहीं होती है। निःसंदेह असम के मुखौटा-कला की विशेषता हमें प्रभावित और प्रेरित करती है।

असम में मुखौटा-कला के प्रथम प्रयोगकर्ता श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव हैं। यह कला अंकिया नाट और भाओना जैसे नाट्यरूपों में सर्वप्रथम प्रयुक्त हुई। पूर्वोत्तर भारत में यह कला 500 वर्षों से भी अधिक पुरानी है। इसका निर्वहन आज भी माजुली द्वीप और सामागुरी सत्र में कुशलतापूर्वक होता आ रहा है। वर्तमान में रास-उत्सव को माजुली में लगभग 55 स्थानों पर उल्लास के साथ मनाया जाता है जिसमें मुखौटों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। सामागुरी सत्र के प्रसिद्ध मुखौटा-कलाकार डॉ. हेमचन्द्र गोस्वामी पिछले 35 वर्षों से इस कला का निःशुल्क प्रशिक्षण सत्र में शिष्यों और देश-विदेश से आने वाले पर्यटकों को दे रहे हैं। तात्पर्य यह कि पूर्वोत्तर भारत की मुखौटा-कला सत्र की परंपरा से जुड़े होने के कारण व्यवस्थित और सांस्थानिक है। यहाँ मुखौटा-क्कला में नवीन प्रयोग भी देखने को मिलता है।

संपूर्ण भारतवर्ष में मुखौटा-कला अव्यक्त को व्यक्त करने की एक नाट्यशैली है। भाव को अभिधा में न कहकर व्यंजना में प्रस्तुत करने की प्रविधि है- मुखौटा- कला। यह नाट्यशैली का ही रूप है। मुखौटा कला की सार्वभौमिक उपस्थिति रही है। दुनिया के लगभग प्रत्येक समाज और संस्कृति में मुखौटा मनुष्य की कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। भारत का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जहाँ के लोकनाट्य में मुखौटा की उपस्थिति न हो। प्राचीनकाल से ही मुखौटे मनुष्य की विभिन्न वृत्तियों को अभिव्यक्त करने के साधन रहे हैं। मानव स्वभाव में बहुत कुछ ऐसा है जिसे हम अपने चेहरे से व्यक्त नहीं कर पाते हैं, मुखौटा मनुष्य की उसी कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता का सुंदर उदाहरण है। स्थूल रूप में कहें तो मुखौटा चेहरे के ऊपर चेहरा लगाना है लेकिन सूक्ष्म रूप में देखें तो यह व्यक्तित्व का रूपांतरण कर यथार्थ को उद्घाटित करने वाला नाट्यशिल्प है। लोक में मुखौटे की उपस्थिति नाटक और रंगमंच के शास्त्रीय विधान से पहले की मानी जा सकती है। यद्यपि भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में अभिनय के जिन चार प्रकारों की चर्चा की है उनमें 'आहार्य' को मुखौटा कला के सदृश माना जाता है तथापि संस्कृत नाटकों में मुखौटे का सीधा उपयोग न होकर चेहरे रंगने की प्रथा के रूप में प्रचलित रही है। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि मुखौटा लोकनाट्यों की उपज है, न कि शास्त्रीय नाटकों की। इसके बावजूद नाट्यशिल्पों में मुखौटे का उपयोग अनवरत जारी रहा। लोकनाट्यों में तो इसकी प्रचुरता रही ही है, हिंदी नाटकों में भी मुखौटे का सहज उपयोग मंचसज्जा से लेकर अभिनय के विविध रूपों में देखने को मिलता है। तात्पर्य यह

कि शास्त्र ने जिस मुखौटे को छद्मवेश के कारण वह सम्मान नहीं दिया, लोक ने उस मुखौटा-कला में विविध प्रयोग किये। कालांतर में यही मुखौटा-कला लोक-शास्त्र सहित समस्त नाट्यशैलियों का निर्विवाद अंग बन गया।

यद्यपि मुखौटा निर्माण एक स्वतंत्र विधा है किंतु समग्रता में मुखौटा-कला नाटक की ही एक प्रविधि है, एक शैली है। भारत में रंगमंच और नाटक की जो स्वरूप, संरचना और निर्माण प्रक्रिया है उसमें लगातार परिवर्तन हुए हैं। समय के साथ परिवेश में हुए परिवर्तनों ने रंगमंच के साथ-साथ मुखौटा कला को भी प्रभावित किया है।

'भारतबोध' का यह तीसरा अंक मुखौटा-कला के उद्भव, विकास, इसके वैश्विक स्वरूप, सैद्धांतिक-पक्ष के साथ-साथ असम की मुखौटा कला की विशिष्टता तथा भारत के अन्य क्षेत्रों की नाट्यशैलियों में मुखौटा-कला की उपस्थिति को रेखांकित करता है। इस अंक के माध्यम से पाठक मुखौटा-कला की बारीकियों के अतिरिक्त हिंदीरंगमंच और सिनेमा में भी मुखौटा-कला के व्यावहारिक उपयोग से परिचित हो सकेंगे। अध्येता यह भी जान सकेंगे कि मुखौटा निर्माण की प्रक्रिया क्या है और इसका रख-रखाव किस प्रकार किया जाता है। प्रस्तुत अंक में नंदकिशोर आचार्य, जयदेव तनेजा, प्रो. ज्ञानतोष कुमार झा, डॉ. अमित सिंह, माधुर्ज्य कमल हजारिका समेत कई विद्वानों और शोधार्थियों के लेख सम्मिलित किये गये हैं। लेखों के चयन में यह ध्यान रखा गया है कि विषय-वस्तु का दोहराव न हो। इसमें सम्मिलित प्रत्येक लेख मुखौटा कला के एक भिन्न पहलू को दर्शाता है। इसमें पहला लेख है-नंदकिशोर आचार्य कृत 'मुखौटा: आहार्य का अभिनय होना'। इसमें नंदकिशोर आचार्य ने मुखौटा कला के सैद्धांतिक-पक्ष को स्पष्ट किया है। यहाँ आचार्य जी मुखौटा के छद्मवेशी आवरण को नकारते हुए इसे यथार्थपरक अभिनय के अनुकूल बताते हैं, साथ ही इस प्रश्न से टकराते हैं कि 'आहार्य' तो वस्तुतः सामग्री या उपकरण है जिसे मंचन या अभिनय की सुविधा में इस्तेमाल किया जाता है, फिर उसे अभिनय की ही हैसियत दे देना कहाँ तक उचित है? नंदकिशोर आचार्य जी का यह विद्वतापूर्ण लेख मुखौटा-कला के सैद्धांतिक पक्ष पर पाठकों की वैचारिक दृष्टि को समृद्ध बनाने वाला है।

इस अंक का दूसरा लेख जयदेव तनेजा कृत 'मुखौटे, रंगकर्म और आज का जीवन' है। इसमें तनेजा जी ने मुखौटा-कला की विश्वव्यापी उपस्थिति को दर्शाते हुए हिंदी नाटकों में मुखौटे के प्रयोग पर समीक्षात्मक टिप्पणी की है। इसके साथ ही उन्होंने भारत में मुखौटा निर्माण की प्रक्रिया और उसके रख-रखाव की अवधारणा को भी स्पष्ट किया है। इस लेख की विशेषता है कि तनेजा जी आज के जीवन में मुखौटे की महत्ता में हुए दिलचस्प बदलाव की ओर संकेत करते हुए पाठकों के लिए यह सैद्धांतिक प्रश्न छोड़ते हैं कि 'आज के उलझे हुए समय में व्यक्ति की जटिल और दोगली मानसिकता के चलते उसका वास्तविक चेहरा ही जिस कारीगरी और बारीकी से स्वयं एक मुखौटा बन गया-उसे किस दृष्टि से और कैसे पहचाना जाये ?' यह प्रश्न पाठक को झकझोरता है।

इस अंक का तीसरा लेख प्रो. ज्ञानतोष कुमार झा कृत 'मुखौटा-कला और रंगकर्म' है। अपने इस लेख में ज्ञानतोष कुमार झा लोक और शास्त्र के संबंध की व्याख्या करते हुए मुखौटा-कला को लोक की उपज बताते हैं, साथ ही भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित लोकनाट्यों में मुखौटे के प्रयोग का विवरण भी देते हैं। यह लेख हिंदी रंगमंच के अनेक रंगकर्मियों के प्रसिद्ध नाटकों और फिल्मों में मुखौटा-कला के प्रयोग से परिचित कराता है। डॉ. अमित सिंह का लेख 'लोक नाट्य परंपरा में मुखौटा-कला और महापुरुष माधवदेव' पाठक को लोक और शास्त्र की परंपरा से अवगत कराते हुए लोकनाट्यं परंपरा में मुखौटा कला की क्या जगह है ? इसकी व्याख्या करता है। यह लेख दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में मुखौटा-कला की व्याप्ति के साथ-साथ महापुरुष माधवदेव के व्यक्तित्व-कृतित्व और मुखौटा कला के विकास में उनकी भूमिका को भी रेखांकित करता है।

इस अंक में संकलित माधुर्ज्य कमल हजारिका का लेख 'असमिया संस्कृति का एक अन्य पहलू : मुखौटा-कला' असम की सांस्कृतिक विरासत के रूप में मुखौटा- कला को स्थापित करता है। असम के नृत्य, गान और नाट्य की चर्चा करते हुए माधुर्ज्य कमल हजारिका सत्र केंद्रित मुखौटों के कई प्रकारों का उल्लेख करते हैं और मुखौटा बनाने की प्रक्रिया भी बताते हैं। आदित्य कुमार मिश्रा का लेख 'मुखौटा-कला: एक सांस्कृतिक अध्ययन' सत्र, अंकिया नाट, भाओना के साथ मुखौटा कला के संबंध का विश्लेषण करता है। सातवाँ और आठवाँ लेख क्रमशः सूर्यप्रकाश और मीनाक्षी का है जो कि 'मुखौटा- कला और रंगमंच' तथा 'मुखौटा कला के विविध आयाम : एक अध्ययन' पर केंद्रित हैं। सूर्यप्रकाश ने अपने लेख में मुखौटा कला की रंगमंचीय महत्ता को स्पष्ट किया है, वहीं मीनाक्षी ने मुखौटा-कला के विविध आयाम को बताते हुए भारत के विभिन्न राज्यों में होने वाले लोकनाट्यों में मुखौटा कला के सचित्र प्रयोग को दर्शाया है।

इस अंक का अंतिम लेख है पुरबी कलिता कृत 'श्रीमंत शंकरदेव के नाटकों में मुखौटा कला'। चूँकि पुरबी कलिता स्वयं असम की हैं, इसलिए यहाँ श्रीमंत शंकरदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व के विश्लेषण में एक भावनात्मक लगाव दिखता है। इस लेख के माध्यम से पाठक शंकरदेव की मूल असमिया भाषा में की गई रचनाओं को पढ़ेंगे और असम में मुखौटा कला के विकास में उनके योगदान से परिचित हो सकेंगे।

अस्तु 'भारतबोध' का मुखौटा-कला पर केंद्रित यह अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुतं हैं। प्रो. ज्ञानतोष कुमार झा और डॉ. सत्यप्रकाश पाल ने क्रमशः जयदेव तनेजा जी और नंदकिशोर आचार्य जी के लेखों के पुनर्प्रकाशन की मौखिक अनुमति ली। आभारी हूँ। समस्त विद्वान लेखकों का आभार जिन्होंने अपने महत्वपूर्ण लेखों से इस अंक को समृद्ध किया है। आवरण पृष्ठ के चित्र मेरी माजुली यात्रा के हैं। अंत में 'भारतबोध' के संपादकीय समूह, प्रकाशक और प्रकाशन कर्म से जुड़े मित्रों का आभार।

सादर।

आचार्य (डॉ.) चन्दन कुमार

संपादक